International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 25-01-2026, Accepted: 25-02-2026, Published: 13-03-2026
Volume 12, Issue 1, 2026, Page No. 227-229

शेष कादम्बरीः वैश्वीकरण के दौर में बदलते जीवन मूल्यों की पड़ताल

सगीर अहमद
शोधार्थी, हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली, भारत

सारांश
कुल मिलाकर देखा जाए तो लेखिका ने व्यापक स्तर पर वैश्वीकरण के दौर में बदल रहे हमारे जीवन मूल्यों पर गहन विश्लेषण किया है। अंतरपीढ़ी से न जुड़ पाने की पीड़ा क्या होती है उपन्यास में उभरकर सामने आया है। इस बदलती संस्कृति में अकेलापन, संत्रास, घुटन आदि प्रकार की समस्याएं बराबर हमें पढ़ते हुए कचोटती हैं। लेखिका के इस छोटे से उपन्यास में व्यापक चिंताओं को देखा जा सकता है।

मूल शब्दः उदारीकरण, जीवन मूल्य, वैश्वीकरण, अमेरिकी संस्कृति।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक को भारतीय संदर्भ में आर्थिक उदारीकरण के महत्वपूर्ण परिवर्तन बिंदु केरूप में देखा जाता है।यह वही समय है जिसे समाजार्थिक दृष्टिकोण से कई नामों (उदारीकरण, ग्लोबीकरण, विश्वायन, वैश्वीकरण आदि) से अभिहित किया जाता है। इस समय की व्यापक उथल–पुथल तथा बदलाव को कई समाजशास्त्रीयोंएवं अर्थशास्त्रियों ने गंभीरता से देखा है। डॉ अभय कुमार दुबे का शब्दों में–'आजादी रात के बारह बजे मिली थी, लेकिन उसके तकरीबन 44 साल बाद (24 जुलाई 1991) जो सुबह आई उसनेएक नई उद्योग नीति की घोषणा की और बने बनाए ढांचे कोएक ही झटके में कुछ अवशेषों में बदल दिया। इसी दिन दोपहर के बाद संसद में नया केंद्रीय बजट पेश किया गया जिसमेंएकऐसे अर्थतंत्र का आकार प्रकार बनना शुरू हुआ जो राजनीति से नियंत्रित होने के बजाय उसे नियंत्रित करने की इच्छा से लैस था। चार दशक से ज्यादा की अवधि में जिस राष्ट्रीय राजनीतिक, सामाजिक, संस्कृति की रचना हुई थी,एक पल में उस की बागडोरऐसे हाथों में चली गई जो शुद्धरूप से भारतीय हाथ नहीं थेयह भारत के ग्लोबलाइजेशनयानी भूमंडलीकरण की शुरुआत थी।'[1]

वस्तुतः देखा जाए तो इस बदलाव की प्रक्रिया ने व्यापक स्तर पर हमारे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों को भी प्रभावित किया है। बाह्य स्तर पर तो हमेंयह बदलाव दिखाई देते ही हैं, साथ ही समकालीन लेखकों ने भी समय की नब्ज पकड़ कर इन बदलाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। कहा भी जाता है कि "साहित्य समाज का दर्पण होता है" अतः इन परिवर्तनकारी बिंदुओं का समावेश तत्कालीन उपन्यासों में देखा जा सकता है। डॉ. पुष्पाल सिंह के शब्दों में– 'कथा साहित्य की प्रवृत्ति तात्कालिक समस्याओं को आर्थिक तीव्रता से पकड़ने की होती है, इसलिए उनमें अपने समय की चिंताएं और अधिक गहनता से चित्रित विश्लेषित होते हैं।'[2]

वास्तव में देखा जाए तो पिछली सदी के अंतिम दशकों में जिस प्रकार से वैश्वीकरण की स्थितियांरूपायित हुई हैं, साहित्यिक विधाओं में वह चिंता का केंद्र बनकर उभरी हैं। आज हमारा जिस प्रकार से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर पश्चिमीकरण अथवा अमेरिकीकरण हो रहा है इन सब चिंताओंएवं व्याकुलताओं का पूरे साहित्य में खुलकर चित्रण हुआ है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने हमें व्यापक स्तर पर तो प्रभावित किया ही है साथ हीयह व्यक्तिगत स्तर पर भी हमें प्रभावित किया है। इसने हमारे जीवन मूल्यों, निजताओं, स्वतंत्रताओं आदि को भी प्रभावित किया है।

जहां तक मूल्यों की बात अगर हम करें तो इसे अंग्रेजी में 'वैल्यू' के अर्थ में पाते हैं। वस्तुतः इसका प्रयोग क्रय–विक्रय तथा वस्तु की कीमत आंकने के संदर्भ में किया जाता है। वामन शिवराम आप्टे 'मूल्य' शब्द का अर्थ कुछ इसरूप में निकालते हैं–'मूल्य शब्द संस्कृत की 'मूल' धातु में 'यत' प्रत्यय लगाने से बना है जिसका अर्थ कीमत, मजदूरी आदि होता है।'[3]

डॉक्टर चंद्रभान रावत के अनुसार–'जब कोई जीवन दृष्टिया विचार पद्धति समाज में स्थापित और बहुस्वीकृत हो जाती है तो उसे मूल्य कह दिया जाता है।'[4]

डॉक्टर जगदीश गुप्त के शब्दों में–'मूल्य की कल्पना मानव अस्तित्व को उसके पूर्णरूप में स्वीकृत किए बिना संभव नहीं है क्योंकि बोध (मूल्यबोध) का वह विकसित स्तर इसीरूप में उपलब्ध होता है जिसके द्वारा मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया संचालितएवं घटित होती है।'[5]

इसमें कोई संदेह नहीं की 1991 के बाद व्यापक स्तर पर हमारे मूल्यों समाजार्थिक जीवन में बदलाव हुए हैं, वास्तव में परिवेशगत स्थितियां इतनी मजबूत होती है कियह विभिन्न स्वरूपों अथवा माध्यमों से दिखाई देने लगती हैं। चाहे वह कथा साहित्य होया सामाजिक जीवन से जुड़े संदर्भ। अलका सरावगीएक प्रबुद्ध लेखिका की भांति इन बदलावों, मूल्यों के क्षरण को काफी गहराईएवं गंभीरता से देखा है। आज व्यक्तिगत स्तर पर हमारे मूल्य किस प्रकार क्षरित हो रहे हैं इसका सटीक चित्रण 'शेष कादंबरी' में देखने को मिलता है। डॉक्टर पुष्पपाल सिंह के शब्दों में–'भारतीयों के इस प्रकार के विदेश–पलायन ने हमारी सामाजिक संरचना के ताने–बाने को बिखराकर रख दिया है। वैश्वीकरण कायह बहुत भयावह पक्ष है।यह प्रक्रिया हमारे सांस्कृतिक परिवेश और जीवन–मूल्यों को प्रभावित कर रही है जिससे प्रबुद्ध वर्ग चिंतित है।'[6] लेखिका बदलते वैश्विक परिवेश में सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्थितियों को बहुत गहराई से उकेरा है। आज हमारा जीवन, हमारा समाज मूल्य विहीन होकर किस प्रकार अमेरिकी संस्कृत में ढल रहा है उपन्यास के आरंभ में ही इसका स्वरूप दिखने लगता है। वह लगभग प्रहार करती हुई लिखती हैं–'आज दुनिया का सबसे पवित्र शब्द तुम जानती हो नानी क्या है– ग्लोबलाइजेशन! मैंयही लिख रही हूं– सबके दाता क्लिंटन, सबको क्लिंटन रक्खे।'[7] वास्तव मेंयह लिखना भारतीय समाज के लिएक टीस है, जिसे प्रबुद्ध वर्ग देख रहा है साथ हीयह भी देख रहा है कि किस प्रकार वैश्वीकरण की आंधी में हमारे मूल्य अमेरिकी संस्कृति में तब्दील हो रहे हैं। जब कादंबरी अपनी नानी (रूबी) को फोन करती है तो वह 'नानी' जैसा सम्माननीय पद ना लगा करके सीधे 'रूबी दी' कहती है तो

वह चौंक जाती हैं।एकबारगी तो उन्हें अपने कानों पर विश्वास ही नहीं होता–'रूबी दी ने चकित होकर सोचा। "नानी कहना ओल्ड फैशन हो गया है क्या?यहरूबी दी क्या होता है"? ओह नानी, क्या फर्क पड़ता है! सभी तो तुमको कहते हैं।'[8]

अलका सरावगी समय की नब्ज और परिवेशगत स्थितियों से कदमताल करती हुई अपने उपन्यास का कथानक चुनती हैं। अपने पहले उपन्यास (कलिकथा वाया बाईपास) से ही उन्होंनेएक नई भूमि दी है। पाठक पढ़कर नहीं कह सकता कियह कथानक पिछले उपन्यास जैसा ही है। वह अपने उपन्यासों में कथानक के स्तर पर नया आविष्कार करती रहती हैं। 'शेष कादंबरी' मेंयह आविष्कार दिखता है। मात्र कुछ पात्रों के माध्यम से ही उपन्यास की पूरी कथा बुन दी है। इनके उपन्यास में ना तो पात्रों की भीड़ जमा होती है, और ना ही अनावश्यक कथानकीय खिंचाव दिखाई देता है। कथानकीय स्तर पर वे सीधे बात करती हैं तथा विभिन्न परिवेशगत स्थितियों सेरूबरू कराती हुई आगे बढ़ती हैं।

हमारा वर्तमान समय जिस प्रकार धीरे–धीरे अमेरिकी संस्कृति में ढलता जा रहा है और हमारा जीवन मूल्य व्यस्तताओं के चलते खोता जा रहा है इस पर भी लेखिका का गंभीर चिंतन दिखाई देता है–'कादंबरीएक झटके से बिस्तर पर उठ बैठी। "ओह नो नानी, मैं इंटरनेट पर सर्फिंग कर रही थी, अपने 'लैपटॉप' पर" उसने अपने पांव जमीन पर टिकाकर हिलाते हुएरूबी दी को बताया३ 'लैपटॉप'एक छोटा कंप्यूटर होता है और इंटरनेट के जरिए आप दुनिया की तमाम जानकारियां प्राप्त कर सकते हैं३यह ज्ञान तो उन्होंने अखबारों से हासिल कर रखा था। "तो कुछ मिला"? उन्होंने पूछा। "मिलता तो है, पर सब बकवास। कुछ काम का नहीं। ऊपर इतना समय लग जाता है। गर्दन अकड़ गई३ फिर परसों लिखूंगी–मतलब लिखना शुरू करूंगी और फिर शूं" उसने छोटे बच्चे की तरह हवा में हाथ उठाकर हवाई–जहाज उड़ायारूबी जी का मन डूबने लगा था– गहरे, गहरे पानी में। देखा प्रीति तुमने? इससे अधिक समय तोयह मुझे टेलीफोन पर देती थी। अबयहां आकर इसके पास मेरे लिए इतना भी वक्त नहीं।'9 वैश्वीकृत प्रदत्त परिस्थितियां हमारे जीवन मूल्यों से किस तरह खेल रही हैंरूबी जी के उक्त विचार से लगाया जा सकता है। आज हम पूरी तरहयंत्रीकृत हो गए हैंया उस प्रवृत्ति में समा रहे हैं कहना अतियुक्ति नहीं होगी।

वैश्वीकृत बदलती परिस्थितियों के माध्यम से लेखिका ने अपने उपन्यास के अंतर पीढ़ी के दर्द को भी रेखांकित किया है। लेखिका नेयह दिखाया है कि कैसेयह स्थितियां तेजी से हमारे संबंधों को दूर करने में लगी हुई है–'सॉरी नानी, मैंने चिट्ठी का जवाब नहीं दिया। असल में मैं चिट्ठी लिख ही नहीं सकती। ज्यादा से ज्यादा कंप्यूटर पर ईमेल भेज सकती हूं। पर वह अंग्रेजी में होता है और तुम्हारे पास तो कंप्यूटर भी नहीं।'10

अलका सरावगी अपने उपन्यास में नया कथा–वितान तो चुनती ही हैं साथ ही वे तमाम समस्याओं (गरीबी, कारपोरेट जगत की सच्चाई, पर्यावरणीय चिंतायें, वृद्धावस्था की समस्या, आत्महत्या) को भी रेखांकित करती हुई आगे बढ़ती हैं। आज हम भले ही वैश्वीकरण के दौर में जी रहे हैं लेकिन उक्त समस्या आज भी जस की तस बनी हुई है। उपन्यास में गरीबी का चित्रण और कारपोरेट जगत का मायाजाल हमें किस प्रकार छल रहा है बेबाकी से देखने को मिलता है। जब कादंबरी नानी को सड़क के किनारे खड़ी जवान स्त्री के बारे में बताती है तो हमारा ध्यान बरबस उन मूल्यों की ओर चला जाता है जिसके कारण वह पागल हुई–'आपको पता है नानी मैंने कल आते समय क्या देखा? जहां से मैंने पीजा खरीदा, वहां सड़क परएक बिल्कुल जवान औरतएकदम बीच सड़क पर निपट नंगी खड़ी थी। वह पागल थी। उसके बदन परएक सूत तक नहीं था सब आसपास से जा रहे थे। कोई हँस रहा था, कोई शर्म से आंखें चुरा रहा था, पर कोई कुछ नहीं कर रहा था३ उसकी फराक से दिख रहा था कि वह बचपन की हद पार करने जा रही है। कैसे बचती होगी वह रात को? कहां जाती होगी सोने? मेरा दिल बुरी तरह घबराने लगा। आई फेल्ट टेरीबली गिल्टी– मुझे भयंकर अपराधबोध हुआ।'[11]

इतना ही नहीं अलका सरावगीएक साथ कई समस्याओं को लेकर चलती हैं, और उस पर अपना गंभीर चिंतन भी प्रकट करती हैं।एक तरफ वे जहां गरीबी और जहालत की जिंदगी जी रहे लोगों की समस्याओं, उनके मूल्यों सेरूबरू कराती हैं वहीं वहीं दूसरी तरफ हमारे देश की भूमंडलीकृत रंग में रंगने के बाद वास्तविकताओं से भी परिचय कराती हैं। अपने उपन्यासों के माध्यम से वे दिखाती हैं कि किस प्रकार कारपोरेट जगत अपना माल बेचने के लिए उन दुर्गम रास्तों को फांद जाता है और हमारी सरकार वहां तक नहीं पहुंच पातीया पहुंचना ही नहीं चाहती। इन दोहरे मूल्यों (कारपोरेट व सरकार) पर जमकर लताड़ती हैं–'मैं (कादंबरी) बाड़मेर के सूखाग्रस्त इलाके से लौटी हूं, नानी। उसकी रिपोर्ट लिख रही हूं, तो लगता है इस देश की ओबीचुअरी लिख रही हूं। तीन साल से लगातार सूखा पड़ रहा है और तीन साल से सरकार हाथ पर हाथ धरे बैठी है। कोक, पेप्सी और बिसलेरी की कंपनियां अपना हजारों गैलन माल ट्रकों मेंयहां भेज सकती हैं, सरकार पानी नहीं भेज सकती। पर कोक–पेप्सी का स्वाद गाय बैल को तो है नहीं और ना उनके मालिकों के पास उन्हें खरीद कर पीने के लिए पैसा है।'[12]

वैश्वीकृत प्रदत्त अमीर–गरीब खाईं किस प्रकार बढ़ रही है सरकारें कारपोरेट जगत से हाथ मिलाकर कैसी भूमिका निभा रहे हैं लेखिका द्वाराएक प्रबुद्ध वर्गीय चिंतनयहां देखा जा सकता है।

आज वैश्वीकरण की प्रक्रिया हमारे जीवन को अकेली जीने वाली संस्कृति में धीरे–धीरे ढाल रही है। बढ़ते निजीकरण की 'ऑफिस संस्कृति' की भागा–दौड़ी ने हमारे मूल्यों को छीन सा लिया है। व्यक्ति से व्यक्ति को मिलने का समय ही नहीं रह गया है। कादंबरी की भागा दौड़ी से नानी–रूबी दी हमेशा परेशान और सोच मग्न होती हैं कि कुछ देर ठहर कर तो मुझसे बात कर ही सकती थी, लेकिन नहीं, और फिर वह अपने आप को बार–बार समझाती हैं। जब कादंबरी उन्हें मन लगाने के लिए कंप्यूटर, इंटरनेट की बात सुझाती है तोरूबी दी मन में सोचती हैंयह तुम्हे और तुम्हारी पीढ़ी को मुबारक हो–'मुझे अपना ईमेल चेक करना है पता है नानी, मेरे पास इतनी 'मेल' आती है कियदि रोज ना देखूं, तो मेरे ईमेल का अकाउंट ही जाम हो जाए। आप भीएक कंप्यूटर खरीद लीजिए, नानी। आप मन लगाने के लिए उसमें 'चौट' कर सकती हैं, चाहे तो अपनी उम्र सोलह साल भी बता सकती हैं। आपका खूब मन लगा रहेगा।३ अनजाने–अनदेखे लोगों से बात करने की फुर्सत तुम्हारी पीढ़ी को ही मुबारक हो।३ हिंदी–अंग्रेजी के अखबारों में इन दिनों लगातार निकलने वालेएक विज्ञापन की उन्हेंयाद आई– अकेलापन, घबराहट, उदासी दूर करने के लिएयह नंबर घुमाएं। प्रति मिनटया प्रति सेकंडएक रुपया बीस पैसा–याऐसा ही कुछ। क्या सचमुच इस देश के लोग इतने अकेले हो गए हैं कि उन्हें इस तरह खर्च करके टेलीफोन का सहारा लेना पड़े?'[13]

अलका सरावगीएक मंझी हुई लेखिका हैं। उन्हें छोटे–छोटे मूल्यों के बारे में पता है तभी तो वेरूबी दी के अंतर्मन में डूबकर वैश्वीकरण से पनपे इस अकेलेपन, संत्रास जैसी स्थितियों से हम सबकोरूबरू कराती हैं। आज वैश्वीकृत हो रहे जमाने में विज्ञापनी दुनिया हमें कैसे अपने मूल्यों से काट रही है, लेखिका इसकी भी पड़ताल करती है और गंभीर चिंतन पाठक वर्ग के सामने प्रस्तुत करती है दृ'अकेले बूढ़ों के लिए अफीम होती है टी. वी., उन्हें लगा सारे दुख–दर्दों से निजात पाने का सुलभ माध्यम।एक के बादएक सारे टी.वी. सीरियल रिमोट दबा–दबा कररूबी दी देखने लगीं।कई बार तो बीच के विज्ञापनों के समय में दूसरा सीरियल देख कर दो–दोएक साथ भी देख लेतीं।

विज्ञापनों को भी देखा३ सारे विज्ञापनों में खाली सफाई का भूत है– चाहे कपड़ों की धुलाई के लिए सर्फ की खरीदारी में ही समझदारी है,या फेना ही लेना,या निरमा, रिन,एरियल वगैरह और साथ में कपड़े धोने की मशीनें ; चाहे शरीर और चेहरे की सफेदी सुंदरता का राज बताते साबुन और क्रीमें;३ टी.वी. सीरियलों में जो बातरूबी दी को बिकाऊ लगी, वह थी शादीशुदा मर्दों–औरतों के गैर–औरतों मर्दों से संबंधया प्रेम का वही पुराना त्रिकोण– दो लड़कियां–एक लड़कायाएक लड़की दो लड़के। बाप रेरूबी दी ने सोचा, उन्हें देखने वाले बच्चे तोयही समझ कर बड़े होंगे कि जीवन में कोई तीसरा हुए बिना जीवन में ना कोई सनसनी, है ना मजा औरऐसा होना आम बात है।'[14] लेखिका द्वारा विज्ञापनी संस्कृति और सीरियलों द्वारा बढ़ने वाली पीढ़ी को लेकर बच्चों की मनोवृति पर चिंतन वास्तव में गंभीर प्रश्नों की ओर ले जाती है और विज्ञापनी दुनियां की मूल्य विहीन संस्कृति आज न सिर्फ हमारे समाज अथवा संस्कृति को प्रभावित कर रही है बल्कियह व्यक्तिगत जीवन मूल्यों को भी प्रभावित कर रही है।

वैश्वीकरण की आंधी ने ना केवल व्यक्तिगत व सामाजिक स्तर पर हमें प्रभावित किया बल्कि इसने शहरों को भी अपने आगोश में ले लिया है।यायूं कहें कि वैश्वीकरण की विस्तार वादी प्रक्रिया ने शहरों को ही अधिक से अधिक अपनी गिरफ्त में लिया है। लेखिका इस पर भी अपनी सूक्ष्म दृष्टि से शहरीकरण का मूल्यांकन करती है–'समय बदला तो बहुत है– उनका चेहरा ही नहीं शहर तक का चेहरा बदल गया है, पर फिर भी बहुत कुछऐसा है, जो जैसा का जैसा रह गया है। विक्टोरिया मैदान और रेसकोर्स के वैसे के वैसे खुलेपन को छोड़कर बाएं तरफ मुड़ने पर अलीपुर को ले जाने वाला आदिगंगा के ऊपर बना पुराना 'बेलीस' पुल अब 'ताज बंगाल होटल के कारण दुगुना बड़ा और बड़ा और नया हो गया है।'[15] वैश्वीकरण की विस्तार वादी नीतियां जिस प्रकार हमारे ऊपर हावी हैं इसको लेकर लेखिका का सूक्ष्म दृष्टिकोण देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त लेखिका ने इस वैश्वीकृत बदलते समाज की उन बुराइयों की ओर भी पाठकों का ध्यान केंद्रित करवाया है जहाँ हमारे मूल्य विदेशी संस्कृतियों के आगमन से क्षरित हो रहे हैं। ड्रग्स नशा, आत्महत्या आदि कुछऐसी कु–वृतियां हैं जिस पर लेखिका का ध्यान बरबस गया है।

संदर्भ सूची

1. अभय कुमार दुबे (सं.), भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन दिल्ली, दूसरा संस्करण 2007, पृ.21
2. डॉ. पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृ. 68
3. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिंदी शब्दकोश, अमर पब्लिकेशन वाराणसी पृ.812
4. डॉ. चंद्रभान रावत, समकालीन लेखनएक वैचारिक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली। संस्करण 1985, पृ.127
5. डॉ. जगदीश गुप्त, नई कविता स्वरूपएवं समस्याएं, लोकभारती प्रकाशन दिल्ली, दितीय संस्करण 1995, पृ. 13
6. डॉ. पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, राधा कृष्ण प्रकाशन दिल्ली। प्रथम संस्करण 2012, पृ. 64
7. अलका सरावगी,शेष कादंबरी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली। दूसरा संस्करण 2016, पृ. 13
8. 'वही' पृ. 13
9. 'वही' पृ. 144
10. 'वही' पृ. 91
11. 'वही' पृ. 149
12. 'वही' पृ. 34
13. 'वही' पृ.145
14. 'वही'121
15. 'वही' पृ. 25